अक्का महादेवी

अनामिका

अक्का महादेवी दक्षिण की मीरा थीं। एक आदर्श पुरुष, मनचीते पुरुष यानी परमपुरुष की तलाश में उन्होंने महल छोड़ा! कहते हैं, वे इतनी रूपवती थीं कि राजा उन्हें ब्याहना चाहते थे। उन्होंने बलात् उन्हें कुछ दिन महल की घेरेबन्दी में भी रखा, पर उनके मौन प्रतिरोध में इतनी ताकत थी कि उन पर कोई ज़बर्दस्ती चली नहीं। एक बार राजा ने आंचल उतारा तो प्रतिरोध में अक्का ने संकल्प लिया कि वे दोबारा कपड़े पहनेगीं ही नहीं और महाश्वेता देवी की बलात्कृत आदिवासी नायिका, दौपदी की तरह निवस्त्र ही सड़क पर आ गईं।

कबीर ने घर त्यागने की बात की थी, इन्होंने वस्त्र भी त्याग दिए। भोजन त्यागने से भी ज़्यादा गम्भीर त्याग है वस्त्र का — वह भी स्त्री के लिए। सारा आकर्षण 'मिस्टीक' का ही तो होता है, पुरुष अहंकार को आधे ढके, आधे छिपे की रूमानियत ही खींचती है। उसके पार खड़ी स्त्री उसे लुभाती नहीं, डराती है। काल की देवी, काली की गढ़न्त इसका प्रमाण है।

हमारी लोकमनीषा में दरअसल हर देवता एक महाभाव है— मूर्तिमान वीरता, मूर्तिमती शक्ति और हर देवता एक यूटोपिया भी है जिसका स्पष्ट सम्बन्ध स्त्री की अतृप्त कामना से जोड़ा जा सकता है। कृष्ण एक यूटोपिया हैं तो शिव भी यूटोपिया है। सचमुच के पुरुष इतने खूंखार, इतने क्रोधी, इतने लोभी और इतने कामना कातर दिखते हैं कि संवेदनशील स्त्रियां उनका साथ नहीं सह पातीं और मन-ही-मन किसी आदर्श पुरुष का वरण कर लेती हैं जैसे कि इन भक्त कवयित्रियों ने किया— मीरा ने कृष्ण का और अक्का महादेवी ने शिव का। ऊपरी कलेवर और वस्त्रादि के प्रश्न पर वे हंसकर, बग़ावती तेवर में कहती हैं:

जिन हाथों ने कमाया धन
उन पर लगायी जा सकता है चुंगी,
लेकिन सुन्दरता पर कौन-सा कर
बांधोगे?
वस्त्राभूषण छीन सकते हो
लेकिन क्या सकते हो छीन शांति
मेरे चारों ओर लिपटी हुई?
मल्लिकार्जुन के प्रकाश ने
लपेट लिया है जिससे,
वस्त्राभूषण से उसे क्या,
ओ मूरख!

(याइ-किन्तेल्लिमथ, 2006:141)

घर में और सड़कों पर भी पितृसत्ता की भूखी आंखों को लगातार धता बताती हुई अक्का अपनी राह बढ़ती रहीं और ऊपरी सौन्दर्य को भी धता बताती हुई बोलीं:

अन्दर से फल नहीं पके जब तक,
छिलका नहीं खोता अपनी चमक!

गुण-अवगुण बीनने में पड़ी आत्मा का व्यर्थता-बोध रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा-

जब तक गुण-अवगुण
बटोरने-बीनने में लगे हो तुम,
हो कामना की माया,
क्रोध का रंगमहल,
लोभ की मांद,
मोह का मन्दिर,
अहंकार का दुशाला,
जलन का लबादा!

और मोह-माया की व्याप्ति वे कुछ ऐसे करती हैं:

माया शरीर को आविष्ट रखती है छाया-सी
जीवनी ऊर्जा को मस्तिष्क-सी
मस्तिष्क को स्मृति-सी
स्मृति को अवधारणा
अवधारणा को विस्मृति की तरह,
हाथ में उसके गड़रिए की छड़की!

इस माया से, वासनाओं से बंधा व्यक्ति एक किसी आदर्श व्यक्ति या व्यवस्था की छाया में आकर त्यागमय व शालीन जीवन बिताने की सोचता है तो सबसे पहले खुद की हंसी उड़ाता है और फिर अपने आदर्श से अनुरोध करता है कि वो उसे पहले निजी, फिर सार्वजनिक जीवन में एक क्रांति-सी घटित करने में मदद करे-

लाठी के छोर तक चढ़ा बन्दर
डोरी के छोर से बंधी हुई कठपुतली
वैसे ही नाची हूं जैसे नचाया है
तुमने, पिता
जैसे बुलवाया है, बोली हूं
जैसे जिलाया है, जीती रही हूं!

इस तरह के समर्पण से अंह का नाश तो होता है किन्तु यह प्रश्न भी उठता है कि कर्त्ता-भाव जब मेरा है ही नहीं तो अपराध-बोध और श्रेष्ठता भी मेरी कैसे हुई। यह ठीक है कि 'पिता' 'संतान' के कर्मफल के अनुसार ही व्यवहार करने को विवश है, पर थोड़ी-बहुत तो अपना मनाही-पाबंदी वह लगा ही सकता है। इसी मनाही को आस्तिक 'कृपा' कहते हैं। और यदि आप नास्तिक हैं तो इसको त्यागमय जीवन से उपजे अपने मनोवैज्ञानिक ठहराव का फल कह सकते हैं। मनोविज्ञान कहिए या अध्यात्म, एक आदर्श की छाया में बीता हुआ निःस्वार्थ, त्यागमय जीवन व्यक्तित्व को एक खास तरह की तेजस्विता तो देता ही है।

इसी आलोक में हम महादेवी अक्का जैसी भक्त कवयित्रियों को बुद्धि और मनीषा, परा-शिक्षा और सत्संग की बलवती इच्छा से घर की देहली लांघ बाहरी दुनिया में प्रवेश करने वाली आधुनिक स्त्रियों की विकासवादी चेतना से जोड़कर देख सकते हैं।

अनामिका *हिन्दी साहित्य जगत की जानीमानी कवयित्री हैं।*